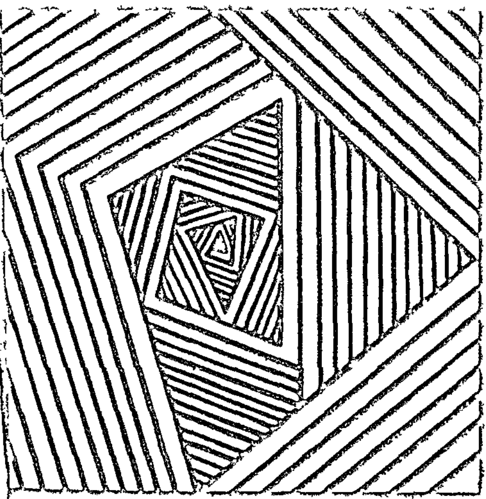
सत्य को मैंने जीया है। सत्य से साक्षात्कार भी अनेक बार किया है। घटनाओं के झंझावतों से मैंने निरन्तर संघर्ष किया है। जीवन के ?? दशक की काव्य यात्रा में अनेकानेक समस्याओं को ज्वार की तरह उठते देखा है, तो भाटे की तरह शान्त होते भी देखा है। अपने चातुर्दिक वातावरण में घटित घटनाओं के माध्यम से जो सत्य मेरे मानस पटल पर अवतरित होने लगे उन्हीं को मैंने शब्दाकार देने का सतत प्रयास किया है। अनुभूति को मुखरित होने के लिये समयोचित वातावरण एवं सुअवसर का मिलना अत्यावश्यक है। स्वर माध्यम बने तथा अनुभूति ने शब्दों के विविध आयामों का इन्द्रधनुषी परिधान पहन कर साकार रूप धारण किया। मैं इस काव्य यात्रा को अपनी काव्य-रचना की प्रथम सोपान मानती हूँ एवं विश्वास करती हूँ कि अनन्त काल तक चलने वाली इस महान साहित्यिक यात्रा के माध्यम से साहित्य के विविध रूपों में अपने आपको स्थापित कर आपको सत साहित्य प्रदान कर सकूं यही मेरी साधना है।

शीला व्यास

अनुभूति के स्वर



शीला व्यास

अनुभूति के स्वर

(कविता-सग्रह)

शीला व्यास

श्री चन्दन प्रकाशन

गगाशहर - बीकानेर

● प्रकाशक

श्री चन्दन प्रकाशन
शीला सदन पुरानी लन
पो गगाशहर-334001 बीकानर

● प्रथम सस्करण अगस्त 1989

रक्षा बन्धन श्रावरण पूरिणमा सवत 2046

सम्पक सूत्र
● श्री च-दन प्रकाशन
शीला सदन पुरानी लेन
पो गगाशहर-334401

● मूल्य पेंतीस रुपये

● आवरण शिल्पी अमित भारती

मुद्रक
● कल्याणी प्रिंटस
मालगो-ाम रोड बीकानर

ANUBHOOTI KE SWAR Smt SHEELA VYAS *Rs* 35

अनुभूति के स्वर

ॐ

सत्-साहेब

अनन्त यात्रा के महान्

ययाति

सहज साधना के अमर साधक

श्री गुरुदेव

अवधूत शिरोमणि श्री चन्दन देवजी

महाराज को शत्-शत् नमन

सत्–साहेब



श्री गुरुदेव

अवधूत शिरोमणि श्री चन्दन देव जी महाराज को शत् - शत् नमन

काव्य सृजन की डगर पर जिसने अंगुली पकड कर
चलना सिखलाया

एव

निरन्तर काव्य रचना की ओर प्रोत्साहित किया है
उस महान् विभूति
ममता-मयी
मातृश्री



श्रीमती विद्यादेवी
को
सादर समर्पित

किस तरह घुला है,
जहर देखिये हवाओ मे

सासो को तो प्यार की,
सरगम चाहिये ।

भाषण-आश्वासन से,
परे हटकर

शाति के लिये,
स्वस्थ लोकतत्र चाहिये ।

आत्म कथ्य

लगभग दो दशको से अनुभूत तथ्यो और सत्या को शब्दो मे रूपायित करते हुये जो कुछ भी मैंने लिखा है वह अनुभूति के स्वर' की रचनाओं के माध्यम से सुविज्ञ पाठको के सामने है। वे इसका आकलन करते हुये मेरी सवेदनाओ से कितना जुड सकेंगे, इसका निर्णय तो उन्ही के हाथ में है।

गगा की पावनतटिनी के किनारे बसा मेरा घर, उसकी चचल लहरो से अठखेलिया करता मेरा मानस अपने परिवार के साहित्यिक एव ऐतिहासिक परिवेश से प्रेरित होकर 13 वर्ष की अल्पायु मे ही काव्यसजना की ओर उन्मुख होने लगा था। वाराणासी से प्रकाशित "आज' दैनिक पत्र के बाल जगत स्तभ' मे बाल कवियित्री का स्थान पाकर मुझे निरतर प्रोत्साहन मिला। पितृश्री का कर्मठतापूर्ण अनुशासन एव ममतामयी माता की स्नेहिल छाया मेरी काव्य यात्रा का अजस्र प्रेरणा स्रोत बनी रही।

जीवन के अठारहवें बसन्त की दहलीज पर पाव रखते-रखते मेरी जीवन यात्रा मे दाम्पत्य का नया मोड आया तो बालू के टीले मेरी काव्य यात्रा के साक्षी बने। गगातट के वासी मेरे जीवन ने जब इस मरु धरा पर अपना पहला कदम रखा तो अनजाने वातावरण के प्रति मन मे शका सी थी,चारो ओर शुष्कता और हरियाली का नामोनिशान नही क्या यहा के लोग भी ऐसे ही शुष्क होगे–यह ज्वलत प्रश्न रचना स्तर पर उभर रहा था–

क्या होंगे यहा के वासी भी ?
इस धरती की तरह रसहीन
क्या हृदय न होगा कोई ऐसा
जिसमे बहेगा स्नेह स्रोत।

यही भाव बोध आपको मेरी कविता "मरुधर वासी" में झकझोर देगा। मैनें यह भी अनुभव किया कि यहा की शुष्कमरुधरा के वासी अनुराग के पराग से पूरण है उनके हृदय में आगत के स्वागत के लिये स्नेह है –

कैसे तोडा जा सकता था
ममता का सुन्दर धागा

और मैं यहा की धूल मे रम कर रह गई मेरे सारे अनुत्तरित प्रश्नों का विकल्प इन पक्तियो मे सिमट कर रह गया–

'मुझको सब कुछ प्राप्य यही है
क्यो कि मेरे प्रिय का गेह यही है।

अस्तु मेरी रचना धारा ने नया मोड लिया और इस काव्य सरिता मे अनेक नये आयाम जुडते गये।

इस सकलन की रचनाओ मे कही मातृगृह की स्मृतिया है, तो नारी पर हो रहे अत्याचारो का करुण क्रदन है दहेज की बलिवेदी पर होमायित होती नववधुओ का विलाप और मा के व्याकुल हृदय की पुकार है। वृक्षों का अनुनय–विनय है, और पर्यावरण के प्रति सजगता है। वत्तमान मे आतकवाद के कारण हिंसा के ताण्डव नृत्य ने किस प्रकार अशाति फला रखी है इसका स्पष्ट चित्रण करती मेरी ये पक्तिया है–

कभी लहराती है लपटे असम मे
केसर की क्यारी कही आग से झुलसती है।
गेहू के पौधे भी रोते हैं खडे खडे
पचनद की धरती जब रक्त रजित होती है।

प्राकृतिक वातावरण के अनेक काव्य चित्र खीचे हैं मैंने। कही दीन हीन मानव की सवेदनाओं से जुडाव है कही शहर की चकाचोध मे खोये हुये व्यक्ति को गाव की माटी का आह्वान है। कही शहीदो को शब्दो का हार समर्पित है, अपनी अनुभूतियो को काव्य विधा के माध्यम से साकार रूप देने में मैं कहा तक सफल हुई हू इसका निर्णय तो मैं पाठकों पर छोडती हू।

मेरी इस काव्य यात्रा में कुछ ऐसे व्यक्तित्व रहे हैं, जिनके प्रति मै श्रद्धा व्यक्त किये बिना नही रह सकती। ममतामयी मा श्रीमती विद्या देवी त्रिवेद के विद्यादान की परिणति ही मेरी काव्य सरचना का प्रेरणा स्रोत रही। श्रीमती त्रिवेद काव्य सरचना के प्रति अपनी वृद्धावस्था के शिथिल क्षणो में आज भी सवेदनशील और जागरूक है मैं अपने को धन्य समझती हू कि ममता मयी मातृश्री के स्नेहिल आशीष वचनो की मुझ पर असीम अनुकम्पा है।

मेरे पिता डा देवसहाय त्रिवेद जिन्होने मरुधरा को जिया हैं, समय समय पर वाराणसी से पधारकर विषयवस्तु एव अभिव्यक्तिकी विधा को परिमार्जित करने में अपूर्व योगदान करते रहे है, मै उनके दीर्घ जीवन की कामना करती हू वे स्वस्थ रह कर मेरा मार्ग दर्शन करते रहे यही अभिलाषा है।

श्रद्धेय डा देवी प्रसाद गुप्त उपप्रधानाचार्य राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय (नागौर) ने मेरी रचनाओ से स्वय की भावधारा को जोड कर नये आयाम प्रदान कर मेरा मार्ग प्रशस्त किया है, उनके प्रति मै हृदय के गहन तल से कृतज्ञ हू।

मेरे जीवन साथी डा सिद्धराज मेरी प्रेरणा के अदम्य स्रोत रहे है, जिन्होने मेरी भावनाओ से जुडकर शब्दो को साकार रूप देने मे एव पुस्तक के प्रकाशन मे अथक परिश्रम किया है, उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापन मात्र औपचारिता होगी। इतना अवश्य कहूगी कि मेरी अभिव्यक्ति को पुस्तकीय रूप देने का समस्त श्रेय उन्ही को है।

मैं उन समस्त कवि बधुओ और कृतिकारो एव आकाशवाणी बीकानेर केन्द्र निदेशक की भी आभारी हू जिन्होंने मुझे आकाशवाणी द्वारा कविता प्रसारित करने का अवसर प्रदान किया कवि सम्मेलनो मे मुझे सुनकर मेरी रचना धर्मिता को बनाये रखने मे योगदान दिया है।

शीला व्यास

क्रम

॥ सत्–साहेब ॥

॥ श्री सद् गुरू चरण कमलेभ्यो नम ॥

समर्पण

विहस उठे ज्योति दीप
सृष्टि हो गई प्रदीप्त
गुरुदेव की चरण धूलि ले
हम श्रद्धा से हुये सदीप्त
हम तो थे अनजान बटोही
पथ का कुछ भी ज्ञान न था
तमसावृत राहे जीवन की
लक्ष्य भिन्न था, पथ भिन्न था
तुमने ही सबसे पहले सिखलाया
जीवन का आयाम नया
इस क्षण भगुर जीवन ने पाया
हर पल ही प्रश्वास नया
ममता, क्षमता, समता की
जीवित मूरत बन आये थे
इस व्यथापूर्ण धरती पर
सरल सहिष्णु बन आये थे
ऊँच नीच में भेद नही था
गगाजल सम पावन मन था
वाणी में सागर सी गरिमा
हिमगिरि जैसा चिन्तन था

धरती मा सा सब सहते थे
पर मुख से कुछ न कहते थे
प्रभु नाम पे हर दम रहते थे
जन जन की पीडा हरते थे
है मंजिल सब की एक
राहे भले अनेक हो
मन के कलुषित भाव हटा कर
मानव मानव मे प्रम हो
आडम्बर का लेश नही था
सहज पथ के साधक थे
कर्म माग पर बढते जाना
धम तत्त्व में पारगत थे ।
है व्यक्ति स्वय भाग्य निर्माता
निज बल से बढकर शक्ति नही
सघर्षों पर जय सदा करो तुम
आत्मबल से बढकर मुक्ति नही
है आज नही वे बीच हमारे
पर स्मृति बसी है कण कण में
मन का कोना कोना आलोकित
उन प्रेरक पावन प्रसंगो से
जो दीप जलाया था तुमने
वा कभी न बुझने पायेगा
युग याद करेगा सदियो तक
वह भूल न तुमको पायेगा ।

मरुधर वासी

ओ मरुधर वासी आज सुना ।
आकुल मन की ये करुण व्यथा ।
संगी साथी छूटे सब अपने
वो पावन गंगा का निर्मल तट
वो पाल उड़ाती नौकाएं
धीवर बालों का अल्हड़ मन
वो अपनी लय में माझी का
उल्लास भरा बिरहा गाना ।
ओ मरुधर वासी
सदा बेला की भरमार रही
वो आम्र निकुंजों की छाया
जहां बीते जीवन के सोलह बसंत
वो पीली-पीली सरसों का झूम-झूम स्वागत करना
ओ मरुधर वासी
पर आज हुआ यह वज्रपात
जब इस धरती को देखा पहली बार
मानस हो उठा उद्वेलित एक बार
क्या होंगे यहां के मानव भी
इस धरती की तरह रसहीन
क्या हृदय न होगा कोई ऐसा
जिसमें बहेगा स्नेह स्रोत
तन चंचल था मन व्याकुल था
यह सब कुछ तो था अनजाना
ओ मरुधर वासी
लौट-लौट जाते पीछे पग

हाता मानस मे था क्रदन
तव जीवन धन की माता की
आकुल ममता मे आकुल आखे
सावन भादो सी भर जाती थी
मै शाप शापिता नारी हू
तुम एक मात्र सम्बल मेरे
यह बात याद दिलाती थी
कैसे तोडा जा सकता था
ममता का वह सुन्दर धागा ।
ओ मरुधर वासी
लौट-लौट जाते पीछे पग
मानस मे होता क्रदन
तब ये टीले बालू के, लगता हाथ उठाकर कहते
जो जीवन धन आज तुम्हारा है
कल तो हम उसके शशव के साथी थे
क्या तुम पर मेरा अधिकार नही
रजकण रोम–रोम का छू जाते
और कहते क्या तुम पर मेरा अधिकार नही ?
कसे तोडा जा सकता था ममता का वह सुदर धागा
ओ मरुधर वासी
लौट लौट जाते पीछे पग
मानस मे होता क्रदन
तब समझाता व्याकुल मन को अपने यह कहकर
अब मुझे सताप नही है
मेरे जीवन का श्रय यही है
मुझको सब कुछ प्राप्य यही है
क्योकि मेरे प्रिय का गृह यही है
ओ मरुधर वासी –

ꕤꕤꕤꕤ

सम्बोधन

हम सब जीते है एसे परिवेश म ।
हर तरफ परम्पराए है
नियमा की लम्बी चौडी फेहरिस्त है
कलियो के लिए भी काटा भरी पगडडिया है
हाथ जा खेलते थे गुट्टे
केश जिनको पकडकर हाते थे झगड
आज वा बद है अवगु ठन मे
लाज का पहरा है उन पर
भाला बचपन खाने खेलने का बचपन
हाय बद हा गया पिजडे मे ।
परियो की कथाये डूब गई
चाची भाभी के सम्बाधनो मे ।

विडम्बना

यह कैसी विडम्बना है !
जीवित के लिए नहीं स्नेह की एक बूंद भी
अमृत का एक कण भी
पर उसके बाद हम गुंजाते हैं
विलाप में धरती और आकाश को
पर जाने वाला तो चला गया
और ले गया अपने साथ व्यथायें अपनी
निःशेष रह गई हैं मात्र कथायें ।

श्रम एव जयते

करना है हमको श्रम सीकर से जीवन का अभिसिंचन
श्रम बिना ये जीवन मृत है
श्रम ही तो जीवन को जीवन देता है
आजाद हुआ जो भारत अपना
यह श्रम की ही तो प्रतिफलता है
यदि सूरज श्रम नहीं करे तो
यह सृष्टि तमोमय हो जायेगी
यदि चंदा शीतल न करे धरा को
रजनी तो रो रो अकुलायेगी
करना है हमको
इसलिये धन्य तो है कवि
जो श्रम का पूजन अर्चन करता है
अपनी सशक्त लेखनी लेकर
कागज पर शब्दों में श्रम करता है
यदि कृषक खेतों में श्रम नहीं करे
यह वसुधा बंजर रह जायेगी
ये हरियाली मदमाती फसल
वीरान मरुस्थल हो जायगी
करना है हमको
श्रमिक का श्रम ही कर्म है, धर्म है
यदि श्रमिक कारखानों में न बहाये पसीना
तो राष्ट्र का उत्थान मात्र रह जायगी कल्पना
रुक जायेगा विकास, चरमरायेगा आर्थिक ढांचा
इसलिये करना है हमको
श्रम सीकर से जीवन का अभिसिंचन

नारी की नियति

शायद यही नियति है नारी के जीवन की
कि अपना या घर आगन छोडकर
सजानी पडती ह देहरी पिया की
और उस देहरी पर उसे जिन्दा जलाया जाता है
केवल कुछ सिक्कों के लिए
चादी के चन्द टुकडो के लिए
होमायित किया जाता है उसे
दहेज की बलिवेदी पर
कह दो उन भूखे भेडियो से
जो लगाते है लडको की बोली
उनके घर भी होगी कन्यायें
क्या वो अनब्याहो रह जायगी
क्या वहा न सजेगी कोई डोली
तो आओ देश के भावी कर्णधारो
सकल्प ले आज के पावन दिवस पर
कि दहेज के दानव से मुक्त करेंगे
देश जाति और समाज को
और अगर ऐसा न हुआ तो
आग लग जायेगी सारे समाज को
नारी मा है, पूज्या है
इसी मे सार्थकता है उसके जीवन की
शायद यही — —

— ❀ —

कहां खो गया है

कहा खो गया है
मनु का मनुजत्व
श्रद्धा की गरिमा
शैशव का उन्मुक्त हास
यौवन का उन्माद
शायद खो गया है
बढते मूल्यो की कतार मे
महगाई की भीषण मार मे
धर्म, जाति, भाषा और वर्गभेद
की दुर्जेय प्राचीर मे ।

गांव की बेटी

पहले एक घर की बेटी होती थी

पूरे गाव की बेटी

सब उसे दुलारते थे सबसे गले मिलती थी।

अब नही बढ़ता है

कोई हाथ गले लगाने का।

गले कौन मिले, जब गले कटने की नौबत आ गई



एक पाती

यह आज सुना है क्या मैंने
तू दुनिया में ही नही रही
तेरी आशा अभिलाषा सब
अग्नि मे भस्मीभूत हुई
जिस दिन तू इस घर में आई
ये आगन महका चहका था
मेरी जीवन बगिया का हर कोना
खुशियो से अजुरी भरता था
तेरी क्रीडाय देख देख
ममता का हृदय विलसता था
तू जब खिल खिल कर हँसती थी
मधु का कण निखरा पडता था
नाजो से पाल पोसके
डोली में तुझे बिठाया था
हाथो मे कगन बजते थे
माथे पर सिंदूर दमकता था ।
पर थोडे अतराल मे ही तो
तेरे जीवन की बगिया में
वीरानी सी क्या छाई थी ?
पूनम चदा सी बेटी पर
वो रात राहु बन आई थी
तू अपन पीछे उन अबोध
मृग छौनो को भी छोड चली
वो आज तरसते ममता का
तू तो अनजाने देश चली ।

ये तेरी नियति है बेटी
　　　　　　　　है विधि का भी लेख यही
लाखो अबलाओ की यही नियति है
　　　　　　　　लाखो अबलाओ की नियति यही
इस दहेज के दावानल ने
　　　　　　　　लाखो की अस्मिता लूटी है
जो आज भावरे पडती है
　　　　　　　　कल वो ही अगारो में बैठी हे
नारी ही नारी की शनु है
　　　　　　　　ना तब चेती थी, ना अब चेती है
नारी तुम्हे अपने रक्षण हेतु
　　　　　　　　स्वय प्रलयकारी बनना होगा
जो अग्नि शिखाये जलाये तुम्ह
　　　　　　　　उसका विनाश करना होगा

शांति का सुमन

क्या आदमी और आदमी के बीच
दीवार खिंची है
क्यो जाति, धम, भापा मे
ये दुनिया बँटी है
है एक ही तो माता की
गादी के सारे लाल
माता भी कभी खण्ड–खण्ड
टुक्डो मे बटी हे
क्या आज दानव वनकर आदमी
वायी भुजा से दायी भुजा को काटता हे
मदिर मस्जिद गुरुद्वारो मे वसाया है जिसको
वहा तक पहुचने का एक ही रास्ता है ।
एकता का रग देकर, प्रेम की सुगध लेकर
शाति का सुमन खिलाओ साथिया
बिखरे हुए पुष्पो का एक सूत्र मे पिरोकर
एकजूट होकर आगे आओ साथिया ।



उद्‌बोधन

कभी ऐसे भी दुर्दिन थे
हमारी सासा पर पहरा था ।
खडे थे सिर झुकाये हम
दमन का चक्र चलता था ।
शहीदो ने देश की खातिर
लहू अपना बहाया था
वतन पर मर मिटने का
फिर सकल्प दोहराया था
इसी शुभ दिन के लिए
माताओ ने गोद खाली की
सजी थी थाल मे राखी
कलाई मिल न पाई थी
सजे थे हाथ मे कगन
पैरो मे, पायल बजती थी
मिटे जब वो अलविदा कहके
सुहाग की होली जलती थी
हुये भगतसिंह सुभाष से इस देश मे पदा
जिये थे देश की खातिर
मरे थे देश की खातिर
पर कुछ हुए जयचद भी ऐसे
जिन्होने विश्वास की लौ मे
छल की चिगारी लगा दी थी
आज विघटनकारी तत्त्व
सिर उठाये फिर खडे ह
देश की अखण्डता को ध्वश
करने मे जुटे हुए ह
हमे अपनी आजादी को अक्षुण्ण बनाये रखना ह
अखण्ड भारत को
पुष्पित और पल्लवित करना है ।

अहिंसा का सूरज

मेरे देश तुझको ये क्या हो गया है
अहिंसा का सूरज क्यो धूमिल हो गया ह ?
जग सोया था जब बेसुध सा
तब तूने उसे जगाया था
सत्य, अहिसा आर शाति
का अभिनव दीप जलाया था
तेरे कण कण मे गू जी थी
गौतम–गाधी की वाणी
जल गई पद्मिनी जौहर मे
बन गई राख से चिनगारी
तेरी सतानो ने सदा मर–मर कर
जीना सीखा था
था शीश झुकाया कभी नही
पर शीश कटाना सीखा था
जो तेरी मिट्टी से निर्मित है
आस्था के पावन स्थल है
गौरव प्रतीक हैं तेरे
सस्कृति की अमूल्य धराहर है ।
जिन गुरुद्वारो मे गू जा करती
गुरु नानक की अमृत वाणी
ह आज वहा हँसती दानवता
मानवता रोती खडी–खडी

उद्‌बोधन

कभी ऐसे भी दुर्दिन थे
हमारी सासों पर पहरा था ।
खड़े थे सिर झुकाये हम
दमन का चक्र चलता था ।
शहीदों ने देश की खातिर
लहू अपना बहाया था
वतन पर मर मिटने का
फिर सकल्प दोहराया था
इसी शुभ दिन के लिए
माताओं ने गोद खाली की
सजी थी थाल मे राखी
कलाई मिल न पाई थी
सजे थे हाथ मे कगन
पैरों मे, पायल बजती थी
मिटे जब वो अलविदा कहके
सुहाग की होली जलती थी
हुये भगतसिंह सुभाष से इस देश मे पैदा
जिये थे देश की खातिर
मरे थे देश की खातिर
पर कुछ हुए जयचद भी ऐसे
जिन्होने विश्वास की लौ मे
छल की चिंगारी लगा दी थी
आज विघटनकारी तत्त्व
सिर उठाये फिर खड़े है
देश की अखण्डता को ध्वश
करने मे जुटे हुए है
हमे अपनी आजादी को अक्षुण्ण बनाये रखना है
अखण्ड भारत को
पुष्पित और पल्लवित करना है ।

अहिंसा का सूरज

मेरे देश तुझको ये क्या हो गया है
अहिंसा का सूरज क्यों धूमिल हो गया है ?
जग सोया था जब बेसुध सा
तब तूने उसे जगाया था
सत्य, अहिंसा और शांति
का अभिनव दीप जलाया था
तेरे कण कण मे गूंजी थी
गौतम–गांधी की वाणी
जल गई पद्मिनी जौहर मे
बन गई राख से चिनगारी
तेरी संतानो न सदा मर–मर कर
जीना सीखा था
था शीश झुकाया कभी नही
पर शीश कटाना सीखा था
जो तेरी मिट्टी से निर्मित है
आस्था के पावन स्थल है
गौरव प्रतीक हैं तेरे
संस्कृति की अमूल्य धराहर है ।
जिन गुरुद्वारा मे गूंजा करती
गुरु नानक की अमृत वाणी
है आज वहा हँसती दानवता
मानवता रोती खडी–खडी

कभी लहराती ह लपटें अमम मे

केसर की क्यारी कभी आग मे भुलसती ह

गेहू के पौध भी "ोते हैं खडे–खडे

पचनद की धरती जब रक्त रजित होती ह

बीहड जगल मे भटकता मानव तेरा

लगता है अपनी पहचान खो बैठा ह

ज्ञान–पुज का जनक स्वयभू

अ घेरो से साठ गाठ कर बठा ह

स्नह ओर प्रेम की बाती का

लगता ह तेल चुक गया ह

शाति ओर दया लगती ह स्वप्निल बातें

शायद उनके झरना का जल सूख गया ह



मेरी माँ

यह क्या सुन रही हू मैं
कि मेरी मा का मस्तिष्क सज्ञा शून्य हो गया ह
होठ थरथराते ह,
जबान कपकपाती है
पर बोल नही सकती मेरी माँ
एक टक देखती रहती है, मुझ को,
आपको और हम सबको ।
मेरी मा की उगलिया मे
रह रह कर होता ह कम्पन
बेजान से हो गये ह हाथ
होना चाहती है गतिमान
पर परो मे जडता भी आ गई ह
अपलक निहारती ह बुझी-बुझी आखो से
मुझको, आपका और हम सबका ।
करोडो सतानो को पोषित करने वाली मेरी मा
आज अपने को अनुभव करती ह
असहाय और अरक्षित
लोग कहते हैं
मेरी मा को लक्वा मार गया ह ।
पर मुझे लगता ह,
जहरीली हवा जो चारो तरफ फैली ह
मेरी मा की नसो मे धीरे-धीरे घुलती जा रही ह ।
धर्म परिवर्तन और बटवारे की भावना

जिसे हवा द रहे ह मेरे अपने ही भाई
उसमे मेरी माँ ती समस्त भावनाय
भस्मीभूत हा रही ह
क्या-क्या सपने सजाये थे मेरी माँ ने ?
जिनका सीचा था अमृत की बूदा से
उन्ही में उग आय ह विषैल नाग ।
जा दशित करना चाहते ह
मेरी माँ के एक–एक अग का
इसी पीडा से मेरी मा रह रह कर काप उठती है
और देखती ह सूनी उदास आँखा मे
मुझका, आपका आर हम सबका ।
आज मेरी माँ की अश्रुपूरित आखा म
आशा की एक किरण फूटी ह
आजादी के पावन पव पर
उसे एक आशा सी बधी ह
उसकी पुकार है, गुहार ह
मुझसे, आपसे, हम सबस ।



अबोला पछी

कितनी वार साचा कि
ढलती धूप को कैद कर लू
अपनी वद मुट्ठियो में।
फूलो की सुगध को समेट लू
अपने केशो म ।
सूरज की राशनी म
रोशन कर लू मन के गलियारे का।
अार ये भी मोचा कि चन्दा की चादनी का
पाहुन बना ल अपनी तरुणाई को
उम्र की गतिमयता का वैद कर लू
अपने चचल कदमा मे ।
कितनी वार साचा कि उन्मुक्त पछी की तरह
उडती रहू असीम आकाश म
कायल की रसभीनी कुहू-कुहू को
वद कर लू अपने हाठो म
हरा आचल पसारे इस धरती पर
रुमझुम पायलिया पहने
कोई प्यारा सा गीत गुनगुनाऊ ।
पर ये सब कुछ न हो सका
आज मैं स्वय वन्दी हू
केवल देखती हू वन्द कमरे मे धूप का छोटा सा टुकडा
सूरज की रोशनी दूर न कर सकी
मेर मन के अधियारे का
मेरी उम्र की तरुणाई आज
मोहताज ह दूसरो की दया की
अार मेरे चचल कदमा पर पहरा विठा दिया गया है
पायलिया की रुमझुम खामाश है
और परकटे पछी की तरह म अबोली सी बैठी हू।

***

उदास चिडिया

आज उदास है वो नन्ही सी चिडिया
चहचहा रही है, पर बोली मे अनकही व्यथा है।
दरवाजो पर, खिडकिया पर, वारजो पर, छतो पर
मु डेर पर, हर तरफ उसकी नजरे खोजती है।
वह चहचहाती है, पर बोली मे अनकही व्यथा है
उसने तिनके चुनकर बनाया था घोसला
जिसमे रहते थे सद्य जात अडे
जा वडे होने पर उड सकते थे सीमाहीन आकाश मे
पर बिल्ली ने अपने आक्रामक पजो से उसे दबोच लिया है
और घोसले का तिनका तिनका बिखेर दिया है।
हमेशा ऐसा ही तो होता आया है
वह तिनका तिनका चुनती ह
नय घासले बनाती हे
सपनो के ताने बाने बुनती है
पर हर वार बिल्ली अपने आक्रामक पजा
से उसे दवाच लेती है
और घासले का तिनका तिनका बिखेर देती है
क्योकि बिल्ली के मुँह मे ताजा खून लग चुका है



अपनापन

यह जीवन है मृग मरीचिका

जिसमे सब कुछ पाने री प्यास मे

हम आगे बढते जाते है

स्वय रा छलावा देकर

दूसरा को भी छलते जाते है

और अपनो से दूर हाते जाते हैं

पर सब कुछ पाने की होड मे

छूट जाता ह वडा प्यारा सा अहसास

मन की शाति

और सम्बन्धा वा अपनापन।



ज्वालामुखी

वहते हैं तू लक्ष्मी है, दुर्गा है
शक्ति की अवतारी है
फिर भी क्यों सब कुछ सहकर
तू मौन रहा करती है
क्यों तू कर देती है मुस्काते होंठो से
थरथराते हाथों मे
जीवन के सधि पत्र पर सपाट सा हस्ताक्षर
क्यों तू अश्रु से भीगे, अचल की कोर पर
मन का दुःख-सुख रखकर बन जाती है जीवित पत्थर
जीवन के मानदड बदल गये कितने ही
पर तू जहा थी वही पर खडी है
अब भी जरा सी भूल पर,
तुझे तेरे गौतम करते है शापित
किसी की जरा सी उगली उठ जाने पर
तुझे तेरे राम करते है निर्वासित
यह सच है कि तू नारी है
ममता की प्रतिमूर्ति है
जग के कण कण को स्नेह बाटती
पाषाण का जीवत करने की अद्भुत शक्ति है
पर जब मनुज भूल बैठता है वह तेरे माँ बहन के
पावन स्वरूप को
तब भी तू क्यों अबला बनी रहती है ।
द्रौपदी की याद कर इन सदर्भों मे
जब उसने केश खोल सौगध खाई थी
जब तक न धोऊ गा अरि के रक्त से
कभी अपनी माग न सजाऊ गी
जो करते है तेरी
अस्मिता पर प्रहार
तू भी उनके लिए
रणचडी बन जा
मेरी सोयी नारी जाग जरा
फूटता हुआ ज्वालामुखी बन जा ।

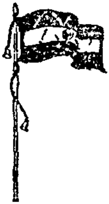
जड़ संवेदनायें

आज हमारी सवेदनाये जड हो गई है
हृदय पत्थर हो गया है
आसुओ का सागर सूख सा गया है ।
हर रोज किसी न किसी का घर उजडता है
किसी माँ की गोद सूनी हो जाती है
सौभाग्य की लाली सदा के लिये मिट जाती है
किसी के बुढापे का सहारा मौत के अंधेरे मे सो जाता है
पर हम देखते हैं चुपचाप ।
केवल हम क्यो सारा देश देख रहा हैं ।
सबकी आँख देखने की
और कान सुनने के अभ्यस्त हो गये है
किसी भी आख से नही गिरती आसु की एक बूंद
क्योकि आज हमारी सवेदनाये जड हो गई हैं ।

माटी का मूल्य

जो वधा रहा निज वधन मे
आजादी की कीमत क्या जाने
जो जुडा रहा भौतिकता से
माटी का गौरव क्या जाने
उत्तु ग हिमालय क्या जाने
क्या होती मन की गहराई
गगा की लहरें क्या जाने
क्या होती मरधर की आधी
खारा सागर भी क्या जाने
क्या होती अमृत की बूदे
भूखा प्यासा वचपन ही जाने
क्या होती रोटी की कीमत
आजादी की कीमत उनसे पूछो
जो समय से पहले विखर गये
कुछ कली चढी कुछ फूल चढे
कुछ फासी के तख्ते पर भूल गये
पूछो माता की ममता से
जिसने छाती पर पत्थर रखकर
बेटो का वलिदान किया
पूछो वहनो की राखी से
जिनके सग मेले खाये थे
उनका जीवन कुर्वान किया
पूछो सिंदूरी रेखा से
क्यो सुख की सेज जलाई थी

हसते–हसते अपने हाथो
अपनी बलि आप चढाई थी
इस धरती का चप्पा–चप्पा
वीरो के यश से गूजा था
तुम मुझे खून दो मैं दू आजादी
इस मन्त्र ने जीवन फूका था
भगत, गोखले, पाल, तिलक ने
धरती की माग सजाई थी
है जन्मसिद्ध अधिकार हमारा
आजादी हित दी तरुणाई थी ।
इस माटी का कण–कण
गौरव गाथा से अनुरजित है
हम और उन्हे दे सकते क्या
यह शब्दो का हार समर्पित है ।



आस-पास

कौन कहता है हम अकेले है।
हमारे आस-पास चारो तरफ,
बहुत कुछ बिखरा पडा है
देखने और सुनने के लिये
बोलने और बतियाने के लिये
फिर भी हम कहते है कि हम अकेले है।
प्रकृति का खुला आगन
उषा की लालिमा
पक्षियो का कलरव
वृक्षो की हरीतिमा
पुष्पो की सुगध
शीतल मन्द बहती बातास
मुख उठा कर
कान खडे कर
दौडते, गायो के
चितकबरे से बछडे
सब कुछ तो है हमारे आस-पास ।।
पर हम अपने आस-पास देख नही पाते
सुन नही पाते इनकी आवाज
क्योकि हमने कोमल भावनाओ को
थपकी देकर सुला रक्खा है
अपने मन से खुलने वाले हर
गवाक्ष को बन्द कर रक्खा है
आहटें आती हैं, द्वार पर दस्तक देती है
पर हम उनको सुनकर भी कर देते है अनसुनी
क्योकि हमने चारा ओर
इर्ष्या, द्वेष, छल-छद्म का जाल सा बुन रक्खा है।
इसलिये हम अब तक अकेले हैं।

आक्रोश के आयाम

राष्ट्र के कर्णधार
भविष्य के निर्माता
युवा पीढी
अर्तमन में लिए सुसुप्त ज्वालामुखी अगार
घूमती फिरती है लिये असख्य डिगरिया
पर पास नही है
शिफारिसी पत्र, परिचय पत्र
जो कि नियामक है
इनके भविष्य का, सुनहले सपनो का।
राजगार दफ्तर के चक्कर काटते
घिस गये है जूते, फट गई है एडिया
सामने घूमता है आखो के
मां का झुर्रीदार चेहरा
बूढे पिता का लाठी के
सहारे चलता अस्थिपजर
बहन की सूनी माग
जो एक प्रश्न वाचक चिन्ह है ?
कैसे पूरे होगे यह सपने
फूट पडती है अश्रुधारा
रक्तिम आखो से
ज्वालामुखी सा उबलने लगता है
और तब होती है तोड-फोड
आगजनी, हडताल, क्राति और घेराव
आक्रोश की अभिव्यक्ति मे
शायद यही है आयाम।

शाश्वत सत्य

सूरज की किरण,
नही करती है भेदभाव
भवनो मे रहने वाला से
झोपडे मे रहने वाले
अधिक धूप सेक्ते हैं
क्योकि उनके पास, खाने के लिए बहुत कुछ है
और इनके पास कुछ भी नही ।
चन्दा की चादनी,
नहलाती है सबको समान भाव से
ऊँची इमारतो मे रहने वाले
भले ही इसके मुहताज हों,
क्योकि उन्होने सारी खिडकिया बद कर रक्खी है
पर उसका तो सारा जीवन ही
चादनी मे जगता है
और चादनी में सोता है ।
धरती नही करती है,
जरा भी कृपणता
फसलो का वरदान देती है सबको
अतिम समय गोद मे थपकी देकर
चिर निद्रा मे सुला देती है सबको ।
वृक्षो की छाया,
देती है आश्रय ।

सबको समान भाव से ।
संतप्त तापित पीडित की दग्धता को
शीतल कर देती है
अपने पत्तों को लहरा कर
नदी का जल,
बहता अविरत
भूख से व्याकुल, प्यास से आकुल
पथिक के लिए बन जाता है अमृत तुल्य
शीतल मंद पवन का झोंका,
सबसे ही अठखेलियां करता है
जो अधनंगे है
उनके साथ छुआ छुई या खेल खेलकर
और भी अधिक उन्हें छेडता है।
क्यों नही इनसे सीखते हम
खाइयों को पाटकर
दूरियों को दूर कर
भूखे प्यासे अधनंगो का सहारा बनकर
ममता और स्नेह का
अजस्र स्रोत बहाकर
समता का दर्शन ।



नन्हा दिया

दीपावली आती है
उनके वैभव मे दीप्त भवनो में
मोमबत्ती कन्दीले और
घी के दिये जलते हैं
पर उस छोटी सी
फूस की झोपडी में
निष्ठा और विश्वास का
एक नन्हा दिया जलता है
जिसके आगे सब दिया की
चमक फीकी पड जाती है।



टीस की लहर

कहते है शरीर के एक अग मे
जब होती है पीडा
तो सारे शरीर मे
टीस की लहर दौड जाती है
घर के अगर एक हिस्से मे
लगती है आग
तो सारे घर को ही
झुलसा डालती है
हमारे राष्ट्र का एक अग
वर्षों से रक्तपात की अग्नि मे झुलस रहा है
पर पूरा राष्ट्र खामोश है
न कही टीस की लहर है और न कम्पन ।

रेत के टीले

ये तपस्वी की तरह
साधना में लीन
दिन भर धूप में तपन
रेत के टीले
रात में कितने शीतल हो जाते है।
आंधियां चलती है
ये अपना स्थान छोड देते है।
सब के राम रोम को छू जाते है
पर चिपकते नही,
मानो देते हैं सन्देश
तपस्या और शीतलता का
परम्पराओं का पालन करें
पर उनसे चिपके नही।



जुड़ाव

हम जुडना चाहते है
क्योकि जुडाव मे सुख हैं।
जुडाव नियामक है शाति का
सृष्टि की चिरतननता का
हम जुडना चाहते है
पैरो तले दबी मिट्टी से
बाल-सुलभ चपलताम्रो से
नारी की कोमल भावनाम्रो से
पुरुष के भ्रदम्य पौरुष से
मानवता के म्रादर्शों से
जीवन की व्यवस्थाम्रो से
प्रेम की शृखलाम्रो से
प्रकृति की प्रेरणाम्रो से
पर हर बार जुड जाते हैं
स्वय भ्रपने ही भ्रह से।
भौतिकता के साधनो से।
देह के भूगोल से।
पैशाचिक वृत्तियो से।
मुखौटो के बहु म्रायामा से।
शासन की क्रूर व्यवस्थाम्रो से।

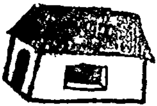
हाशिये के बीच

कागज पर खींच कर हाशिये
नई नई योजनाओ से
बाल दिवस के स्वागत द्वार का सजाया है।
पर कुछ अनुत्तरित प्रश्नो ने
दिल और दिमाग की नमो को चटकाया ह।
कुछ ऐसे भी बच्चे ह
जिनके द्वारे पीडा पहरा दती है।
रूखी सूखी खाकर सोते ह।
धरती जिनका बिस्तर होता है।
वो दिन भर मजदूरी करते ह।
पर पेट की आग न बुझती है।
चिमनी के जहरीले धुए मे
जिनकी सासें धडका करती ह।
वो चिथडो मे लिपटी कलिका
दिन भर गोबर चुगती है
और बस्ते लटका कर जाते बच्चा को
हसरत से देखा करती है।
कुछ इनके भी सपने है
हम क्यो न इनको साकार कर।
इनको भी अवसर देकर
क्यो न इनका उत्थान करे।

दुलार भरे हाथ

कितनी अच्छी थी
वो सर्दी की भोर
जब माँ जलाती थी अगीठी
सिर से सिर हटाये हम
झगड पडते थे
केवल तापने के लिये ।
कितनी अच्छी थी
वो जाड़े की धूप
जब आवाजो को नकारते
दिन विताते थे
केवल खेलने के लिये ।
कितनी अच्छी थी
वो ठिठुरती सी रात
जब दादी-नानी की
खटिया को घेर कर
रतजगे हुआ करते थे
केवल कहानी सुनने के लिये ।
उनके आशीष देते
सिर पर फिरते
दुलार भरे वो हाथ ।

जिनके शब्दो से
झकृत है मेरा मन
जिनके स्पर्श की उष्मा मे
पिघलता है मेरा गात
लेकिन आज
आत्मीयता का स्त्रोत
सूख गया है
सब कुछ बदल गया है
बाहरी परिवेश मे।
सब अनभिज्ञ है
एक दूसरे के
दुःख-सुख से
क्योकि सभी बट गये है
अलग-अलग दिशाओ मे।



आहट

कैसा होगा एहसास
उन लोगो का
जो आखे रहते हुए भी
देख नही सकते हैं ।
जिनके लिए
अर्थहीन है प्रकाश
जीवन एक
लम्बा सा गलियारा है ।
अधेरा ही अधेरा है
आदि से अन्त तक ।
उनके लिये
जीवन एक छन्द है
हर आहट
नई सभावनायें हैं
हर आवाज
चिर-परिचित है
क्योकि सृष्टि का नियन्ता
शायद इतना क्रूर नही
वह एक हाथ से लेता है
तो दूसरे हाथ से देता है
इसलिये न देख पाने वालो के
रोम-रोम ही देते है
आँखो का काम ।



व्यथा

घायल परिंदा
गिरता है धरती पर
कैसी मनोव्यथा होगी उसकी ।
अनवरत यात्रा करते-करते
स्थिति आ जाये
चिर विराम की
कैसी अभिव्यक्ति होगी उसकी ।
कैसा लगा होगा जब
धरती ने किया होगा अट्टहास
शोर मचाती,
हंसती -खेलती
कहकहा मे डूबी
वो ढेर सारी
आबादी की आबादी
जहा कभी पूरा शहर
जीता जागता था
आज वो दब गया है
मलबे के नीचे
और सब कुछ बदल गया है
मरघट के रूप मे ।



अमानत

जिन्दगी कोमल है
अबोध बालक की तरह
ठोकर खाकर गिर पड़ती है।
जिन्दगी दर्पण है
जिसके टूटते ही
बिखर जाती है किरच।
जिन्दगी तपती दोपहरी है
रेगिस्तान की
जिसमें छलावा है मृग मरीचिका का
जिन्दगी अधखुली पुस्तक है
जिसके पृष्ठों को हम
पूरा पढ़ नहीं सकते।
जिन्दगी बट गई है टुकड़ों में
हर टुकड़े में अस्तित्व की तलाश है
जिन्दगी कांटों से घिरा गुलाब है
सौरभ से भरा मधुमास है
जिन्दगी सम्बन्धों को जोड़ती है
अनचाहे रिश्तों को नकारती है।
जिन्दगी शहीद की वसीयत है
जिन्दगी गलियों में रेंगती है
भवनों में वन्दिनी है।

जिन्दगी याचक है
द्वार द्वार भटकती
प्रताडित होती है
ठोकरें खाती
जिन्दगी सुरक्षा विहीन है
जिन्दगी मूल्य हीन है
किसी के लिए राजपथ है
तो किसी के लिए बियावान है
जिन्दगी सम्पदा नही
ये किसी की अमानत है ।
सच तो यह है कि
जिन्दगी परिभाषा मुक्त है
जिन्दगी सीमातीत है ।



अपेक्षायें

कितना पावन सम्बोधन है माँ !
जिसको सुनते ही
तार-तार बज उठते हैं
उस ममता की मूर्ति के आगे
सब नतमस्तक होकर रहते है
वो अपने रक्त मास से
शिशु की रचना करती है
अपना अमृत पय पिला पिलाकर
फिर उसे बडा करती है
अपने खुद सोती गीले मे
पर उसे सुलाती सूखे मे
जब ज्यादा क्रदन वह करता
तो उसे झुलाती झूले में
उँगली से उसे पकड कर वे
धीरे-धीरे चलना सिखलाती है
जीवन का पहला गीत
प्रथम अध्याय उसे समझाती है ।
सोते जगते चलते फिरते
हर दम ये सोचा करती है
यह और बडा हो जाये तो

यह् फूल अगर खिल जाये तो
मेरे सारे दु ख हर लेगा
मेरा जीवन उपवन होगा
पख निकलते ही चूजे के
वह पिजरे मे रह न पाता
माँ के आँचल का खू टा
फिर रोक उसे न पाता है
उन्मुक्त जीवन की चाह् उसे
बधन उसको स्वीकार नही
वह जीता है अपने ढग से
वर्जन-शासन स्वीकार नही
प्रणयी का मधुर सम्बोधन
फिर उसको लगता रुचिकर
माँ का वात्सल्य भरा सम्बोधन
अब उसको अगीकार नही।
वह् बडा हुआ था जिस घर मे
वह घर अब छोटा लगता है
जिस माँ ने बोभ उठाया था
वह् जीवन अब बोभिल लगता है
जिसको उसने आकार दिया
जीवन का सगीत दिया
चतुराई दी सुघराई दी
अपने ही माँस पिण्ड से निर्मित
वह आज अपरिचित लगता है

वह पडी अकेले कोने मे
अपने दिन पूरे करती है
शायद वो फिर से बोल उठे
माँ माँ की ध्वनि फिर गू ज उठे
पर उसकी दिनचर्या म
अब इतना अवकाश कहा ।
रोम रोम को पुलकित कर दे
ऐसा अब अनुराग कहा ।



अस्तित्व

क्यों डरी-डरी सी रहती हो।
घायल हिरणी की भांति
क्यो सहमी सहमी रहती हो।
तुम नहीं मोम को गुडिया हो
न हीं फशन का मॉडल हो
तुम नही देह की सीमा हो
नहो भोग का साधन हो
तुम नहीं सजावटी विज्ञप्ति।
तुम भक्ति हो मीरा की
कालजयी जो कहलाई।
तुमम पन्ना का त्याग भरा
अपने शिशु को अर्पित करके
माटी का मूल्य चुकाया।
जौहर की आग पद्मिनी की
जो ठण्डी नही हुई अब तक
तुम अगर उसे कुरेदो तो दहकता
बन जाये अग्नि पिंड।
वाक् चातुर्य भारती का
तुममें निहित है आज
स्वय आदि शंकर

हुये पराजित ।
रानी झांसी का शौर्य आज भी
तुम्हारी नसो मे प्रवाहित
द्रोपदी का दर्प है तुममे
जिसके खुले केश
आज भी मागते है प्रतिशोध
उन आताइयो से
जो नारी की अस्मिता पर
करते है प्रहार ।
तुम उस तुलसी की रत्ना हो
जिसके शब्दाघात से
रामबोला बने तुलसीदास
जिनको पाकर यह काव्यधारा
हो उठी थी चिरतन ।
तुम हो विद्योत्तमा कालिदास की
जिसके ममभेदी शब्द बाणो ने
मूख को बनाया था
साधक सरस्वती का
और लेखनी से फूटी थी
सस्कृति की अनन्त धाराय ।
तुम वही माता हो
जिसने भगतसिह, सुभाष
वीर शिवा जैसे अनेको को
बचपन से ही सिखाया था पाठ
देश प्रेम, एकता और अखण्डता का ।
सोचो अगर तुम न होती
तो क्या ये होते
क्या सृष्टि को मिलता
(

शाश्वत साहित्य का क्षितिज
मिट्टी पर बलिदान
होने वाली हुतात्माय
सच तो यह है कि
तुमसे ही ये सब है
अगर तुम न होती
तो ये भी न होते।



जीवन सगीत

वर्षों से प्यासी थी धरती
सूखे थे खेत
खलिहान थे खाली
सूनी थी पनघट
सूखे थे ताल तलैय्या
मीलों तक हरियाली का
नामोनिशान न था ।
हड्डियां शेष थी शरीर मे
केवल मवेशियो के
कुछ तो भूख की मार से
समा गये थे, मात के मुँह मे ।
कुछ के लिये हुआ था
अपना ही घर पराया
मिल गये थे
लावारिशो की भीड मे
शेष के लिये था
दश से निर्वासन ।
यह सब देखकर
बेहाल था किसान
देखता था बार-बार

ललचाई आखो से
नीले आकाश का ।
बादलो की गजन का
दामिनी की चमक को
देख सुनकर
नाच उठा मनमयूर
नन्ही–नन्ही बू दो ने
धरती का अभिषेक किया
झडी लगी जब वर्षा की
वसुधा ने सोलह शृगार किया
लहलहा उठे खेत
पशुओ को जीवन दान मिला
वर्षो से आकुल प्राणो को
जीवन का नव सगीत मिला ।

एहि माटी

एहि माटी मे हमार जियरा बसेला।
एहि माटी से जीवन मसार रचेला।
एहि पार बाटे हमरा
पिया के अंगनवा
तो श्रोही पार बाटे हमरा
माई के दुवरवा
भईया का दुलार बाटे
ता भौजी के सगुनवा
बहिनी का प्यार बाटे
तो सखियन के ठिठोलवा
चिरई के पाख
जैसन हमार जियरवा
उडि उडि चलिजाला
माई के अंगनवा
झुकि झुकि निहुरि निहुरि
धनवा के खेतवा
चुमि चुमि चलेला
अंगुली के पारवा
कबहू छावेला दरिद्दर
अकाल के बदरवा

खेत सूख जाला
जल जाला रे बजरिया
बाल बच्चन तरसेला
गायगोरु बिलखेला
टूट टूट जाला रे
धरती का करेजवा
चुई चुई परेला
महुवा के रसवा
कुहू कुहू बोलेला
अमवा पे कोयलिया
जो मनई बसेला
एहि नदी के किनरवा
सोई बाच सकेला
परीत के सन्देशवा
एहि माटी मे-   -



अन्तर्द्वन्द्व

कितना दुष्कर है समझना
मानव मन का रहस्य
जो प्राप्य है
उसमें नहीं करता है सुखानुभूति ।
अप्राप्य सुख के लिये
भागता रहता है अनवरत
और इसी खोज में लगा देता है
अपनी ऊर्जा और शक्ति को ।
वह चाहता है
असीम आकाश समा जाये
उसकी छोटी मुट्ठी में
धरा का सम्पूर्ण सुख वैभव
हो उसके कदमों तले
यह प्रकृति भी चलायमान हो
उसके इंगितमात्र से
पर वह भूल जाता है कि
इस विषमता की ऊहापोह के झंझावात में
सुख का एक छोर भी हाथ लग जाये
तो वही बहुत है
जिन्दगी को सवारने के लिये ।

निष्कपट निष्कलुष स्नेह से पूर्ण
हृदय उसका साथ दे तो
ये सब व्यर्थ हैं
क्योंकि वो प्राप्य हैं
पर ये अप्राप्य है ।
पर मानव मन भागता है
अप्राप्य के पीछे
इसीलिये दुर्बोध है
मानव मन का रहस्य ।



बसेरा

आज किसी ने काट डाला है
उस हरे-भरे पेड को ।
अब तक वह रोज काटता रहा
इसकी शाखा प्रशाखाओं को
पर आज उसने पूरा पेड ही
जड से काट डाला है ।
जब-जब उसने काटा है
इसकी डालियों को
मेरा कोमल हृदय
व्यथित हुआ है
और आज जब वह
पेड धराशायी हो गया है
तो मेरा हृदय जैसे
टूट सा गया है ।
यह वो पेड है
जो वर्षों से खडा था
इसके आगन मे
इस घर के सुख-दुख को
हास्य विलाप को
दीनता और वैभव को

मजोया था
इसने अपने अन्तस्तल में ।
उसके नीचे ही तो खेलते थे
घर के सारे बच्चे
लडते थे झगडते थे
मान मनौवल करते थे ।
कितनी बार गृह वधुओं ने
अपनी श्रद्धा का अर्घ्य जल
चढाया था इसकी जडों में ।
पके हुये आम की तरह
बूढे पुरनियो ने
इसके नीचे ही बैठकर
सुनाई थी
मावस और एकादशी की कहानिया ।
अनगिनत पक्षियो का बसेरा था
इसकी कोमल फुनगियो पर
वर्षा से भीगते हुये
गाय के बछडो को
कितनी बार खूटे से बाधा गया था
इसके ही नीचे ।
कितनी ही गहन समस्याओ के
समाधान ढूढे थे
बडे बूढो ने
बैठकर इसकी छाया के नीचे ।
और आज उसी पेड को काट दिया गया है
नये भवन के निर्माण के लिये
कितना स्वार्थी हो गया है
आज मानव

अपनी सन्तान को घर देने के लिये
दूसरो की जडे काटता है
भावी पीढो के सुख के लिये
नन्हे पक्षियो का
बसेरा उजाडता है ।
वह यह नही सोचता कि
सन्तान भले ही हो जाये कृतघ्न
पर पेड सदा रहेगे कृतज्ञ
वो भले ही इसको करे दुखो से सतप्त
पर पेड प्रदान करेंगे सदा शीतलता ही ।

आस्था

मेरे कमरे की खिडकी से
दिखता है
दूर तक फला हुआ
नीला आकाश
जिसमे भूरे, काले, मटमले रग के बादल
अक्सर भागते दौडते दिखाई पडते है
चपल बालको की तरह ।
द्वार पर खडा पीपल का वृक्ष
चरितार्थ करता है
गीता की इन उक्तिया को
पतझड मे गिरा कर पत्तो को
हो जाता है निवस्त्र
और मधुमास आते ही
नूतन पल्लवो से
अलकृत कर लेता है अपने शरीर को ।
मिट्टी में रोपे गये
गेंदे के छोटे पौधो मे
अब पुष्प खिल उठे है
जो कि सूचक है बसत के आगमन के
अपनी गध से गधायित करते है

मेरे घर के हर कोने को ।
मेरे आगन में लगा
तुलसी का बिरवा
अपनी जडे बहुत गहरी जमा चुका है
जो कि प्रतीक है हमारे
आस्था और विश्वास का ।

अभिशाप

मेरे मधुवन का मधुमास
मागता ह अवदान
करुणा शांति और सुरक्षा का ।
क्योंकि हिंसा से उन्मत्त हाथो ने
उसे लहुलुहान कर दिया ह ।
कोकिल की मधुरिम कू कू
हुई ह नि शब्द
वह जानती है कि
समय बदल गया है ।
आज तरुणाई प्रतिक्षित नही है
किसी पाहुन के आगमन की
उसके कान अभ्यस्त हो गये है
उन पदचापो के
जिनके पडते ही
सारा गाँव थर्रा उठता है ।
सरसो के खेत जो
सरसाते थे तन मन को
जिनमे सोता था
स्वर्णिम स्वप्नो का ससार
आज वो परिणत हो गया ह
रक्त की धारा मे ।
हर पल दहशत ह
आतक के घेरे में घिरे हैं सब

शहनाई की गूंज
बदल जाती है
श्मशान की राख में।
ऐसा करते हैं वार
कि खत्म होता है पूरा परिवार।
कोई पानी देने वाला भी
नहीं बचता है पीढ़ियों में।
कोई है ऐसा जो
सरसा दे फिर से
हरियाली और खुशहाली से
महका दे फिर मे
मेरे मधुबन के मधुमास को।

मेरा शहर

मेरे शहर का स्टशन
दिन भर के शोरगुल
इजन की सीटियो
भीड-भाड से थक कर
बिछुडन के आसुओ से द्रवित हो
मिलन की खुशी से सराबोर।
भी धम, जाति, वर्ग का
गले लगाता।
स्वागत करता।
रात का कुछ घटो के लिय
ऊघने लगता है
किसी थके हुए मजदूर की तरह।
मेरे शहर के लोगो मे
शेष ह मोह
पुरातन परम्पराओ से आज भी।
गम हवाओ के थेपेडे
साम्प्रदायिकता की आग
उसको झुलसा नही सकी है।
सुरक्षित और शात है
मेरा शहर आज भी।
मन्दिरो मे शख घडियाल की गूज

मस्जिदो मे अजान की आवाजें
गुरुद्वारा मे ग्रथ साहिब का पाठ
चलता रहता है अखण्ड
कोई वैमनस्य नही है
आस्थावान हे यहा के लोग आज भी ।
मान मनुहार स्नेह आत्मीयता का
अजस्र स्रोत
बहता है लोगा के अन्तमन म आज भी ।
मेरी यही है केवल कामना
कोई आग न झुलसाये
मेरे शहर को
कोई, जयचन्द विष वमन न करे यहाँ
मेरे इस शहर की सुरक्षा बनी रहे
बनी रहे आस्था
परम्पराओ के प्रति
कोई शाति भग न करे
मेरे शहर की ।



भोर की दुल्हन

भोर की दुल्हन
माथे पर बडी सी टिकुली लगाये
माग मे सेंदुर सजाये
रतिया को मुह चिढाते
पाखी के कलरव की पायल पहने ।
अजुरी में लिए पुष्प माला
पराग कणो से करती है सुवासित
वसुधरा को ।
ओर छोर को भर देती है
नव्य आलोक से
कोटरो मे अपने को छिपाये
विहग वृन्द
हो उठते है आल्हादित ।
जैसे जसे आगे को ओर वढती है
और भी अधिक यौवनमयी हो जाती है ।
दिवस साथी का साथ
उसे भर देता है पूणता से ।



आघात

दीवारो छतो,
दरवाजों, खिडकियो से
चारो ओर से घिरा हुआ
सात तहो के भीतर छिपा हुआ
उन्मुक्त मन ।
चचल मृग छौने की तरह
कल्पित पखो पर सवार होकर
न जाने कहा कहा की सैर करता हुआ
बहुत दूर भटक जाता है ।
रेत के घरौंदे बनाना ।
तितलियो के सतरगी रगो से सपने सजाता ।
वय सधि की चौखट पर खडा मन
न जाने कब यौवन की दहलीज
पर कदम रख लेता है ।
अग अग बनता है साकार वसत ।
कानो मे गूजने लगती है
शहनाई की गूज ।
आगत की प्रतीक्षा मे
मन रहता है प्रतीक्षित ।
एक एक कर आते हैं
कुछ अजनबी से चेहरे

हर बार एक खरोंच
सी छोड़ जाते है
उपेक्षाओं से आहत होता है
व्यंग बाणों से बींधा जाता है।
उत्पीड़ित किया जाता है ।
बार बार नकारा जाता है ।
यथार्थ के कठोर धरातल से
टकरा कर
टूट जाता है
मन का दर्पण ।
फिर एक दिन
सिहर उठता है ।
जब देखता है
अपनी प्रतिच्छाया को
कि यौवन उससे
विदा माग रहा है।



उपवन की कली

मेरे चमन की
इस मासूम कली का
दरिन्दो की
नजर लग गई है ।
खिलते खिलते ही
न जाने क्यो
मुरझा गई है ।
कल तक थी
जो झूमती झेंपती
विहसती फुदकती
वही आज धूल म
अपना आचल बिखेरे
न जाने क्यो
सिमटी सिकुडी पडी ह ।
मेरे साथिया
देखो इसे
कही ये तुम्हारे
उपवन की कली तो नही है ।
इसकी अस्मत को लूटा
इसके वैभव को कुचला
कही ये तुम्हारी
अपनी बिटिया तो नही है ।

सूनी हथेली

मा के ममत्व से पोषित
स्नेह की छाया मे पल्लवित
रक्षा सूत्र से वन्वित
शिराओ मे एक ही रक्त धारा प्रवाहित
सुख दु ख के सहचर
एक छत के नीचे रहते हम ।
काल के क्रूर हाथो ने
तुम्हे हमसे छीन लिया है ।
अनत यात्रा पर
चल पडे हो तुम
स्मृतियो की लकीर
शेष रह गई है ।
इस सूनी हथेली पर ।

गुहार

तोहरे गाँव की डगर
तोहरी बाट तावेला।
हरिहर खेत खलिहान
तोहरी राह जोहला।
जेही मटिया मे
लोट लोट कर
तू अब खडा भइल
जेकरा धूल मे सन सन कर
जिन्दगानी सोनवा नियर भइल
वोही सोनवा नियर माटी
तोहरी याद करेला।
पीपरा की छइया
तोहरे लडकइन की सघाती
होरी घनिया जेकरे सग तू खेलत रहल
ओहो सघाती, ओही छइया
तोहरी याद करेला।
तोहरे सुख दु ख की साखी
ऊ नदिया की हिलोर
ताल तलैया कूँ ए पनघट
लुका छिपी खेल
ओही नदिया, ओही पनघट

ताहरी वाट देखेला ।
काली, भूरी, चितकबरी गैय्यन
जेकरे पीछे तू
भिनसहरे जावत रहला ।
जेकरा पेट भरावल खातिर
तू साम्मी के घर आवत रहला
ओही गैयन की टोलिया
तोहरी श्रास देखेला
तोहरा के श्रादमी बनावे खातिर
तोहरा माई बाबू
केतना दु ख सकट मा जूझला
ऊ टूटी सी मडइया
जेकरा मे तू खेलत रहा ला ।
श्राही मडइया मा भुर भुर करक रावेला ।
ओकरा ममता का श्रचरवा
तोहरो खातिर तरसेला ।
पइसा की खातिर
तू सब कुछ भूला देहिल
ई शहर की चकाचाध में
भालापन सब विसर गइल
राखी के मान तू
दिल से भुला देहिल
ओही बहिनी
ताहार वाट देखेला ।



औपचारिकता

सब भाग रहे हैं
किसी को फुरसत नही है
पीछे मुडकर देखने की
भीड का हिस्सा बन गया है आदमी
यही तो अन्तर है गाव और शहर मे ।
उठती है लाश
तो इकट्ठे होते हैं
हर घर से आदमी
पर शहर मे लाश के करीब से
गुजर जाते हैं लोग
केवल मुँह पर रुमाल रखकर ।
शव यात्रा मे शामिल होना
मात्र औपचारिकता है आत्मीयता नही ।
यही तो अन्तर है गाव और शहर में ।
कोई स्थान जब होता है खाली
तो उनकी आँखे नम हो उठती हैं ।
पर शहर में उसी स्थान के लिये
लग जाते है आवेदनो के अम्बार ।
शुरु होता सिफारिशो का दौर ।
दौड का अन्तहीन सिलसिला ।
उस स्थान को पाने के लिये ।
यही तो अन्तर है गाव और शहर मे ।

मुक्तक

मुखौटो का सैलाब लिये
मुस्कराहट का जामा पहने
सत्ता सुख हथियाने को सिर्फ
वोटो की राजनीति चाहिये ।

●

किस–किसका जला है घर
कौन-कौन हुआ है बेघर
घर जो पडोसी का जले तो
खुश न होइये
जलने के लिये तो केवल एक चिनगारी चाहिये ।

मुक्तक

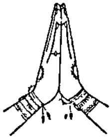
रहने के लिये एक घर चाहिये ।
जीने के लिये सिर्फ ललक चाहिये ।
केवल बातो से पेट नहीं भरता है
खाने के लिये तो बस रोटी चाहिये ।

●

बहु मंजिली इमारतें, लकदक सफेद कपड़े
पाँचसितारा होटल का वैभव
हमने तो केवल सपने मे देखा है ।
सपने तो सपने हैं, पूरे नही होते
हमे तो केवल रोजगार चाहिये ।

कामना

कुछ नहीं है कामना
केवल यही है प्राथना
मेरे स्नेह की छाव तले
दुखी मन की तपन दूर हो ।
इतना प्यार लुटाऊँ कि
घृणा वैमनस्य दूर हो ।
सबकी वेदना में मेरी सवेदना हो ।
प्रकृति के हर कण से
मेरी आत्मीयता हो ।
सब दीन दलित जन
मेरी रचना आधार बने ।
दीवार सभी ढह जाये ।
गाठ सभी खुल जाये
शात उन्मुक्त हृदय की अनुभूति
मेरे सजन का सगीत बने ।
करुणा का इतना स्रोत बहे
कि गगा की धारा बन जाये ।
यह जीवन तो हमारा नही
किसी की धरोहर है
हम रहे न रहे
धरती को फसलो का वरदान मिले
मानव को अनुराग का विहाग मिले
उपवन सुमनो से सुरभित हो ।
हर डगर पर शाति का सगीत हो ।





नाम — श्रीमती शीला व्यास

जन्म — 1 जुलाई 1944

जन्म भूमि — वाराणसी (उत्तर प्रदेश)

कर्म भूमि — बीकानेर (राजस्थान)

शिक्षा — एम ए द्वय, इतिहास, हिन्दी, बी एड

* एम ए (हिन्दी) काशी हिन्दू विश्व विद्यालय, वाराणसी
* एम ए (इतिहास) राजस्थान विश्व विद्यालय, जयपुर
* बी एड राजस्थान विश्व विद्यालय, जयपुर

प्रकाशित पुस्तकें — हिन्दी व्याकरण कक्षा 3 से 8 तक
अंग्रेजी व्याकरण कक्षा 3 से 8 तक

पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित — शिविरा, छकियारी, सृजन के—आयाम, आज, राजस्थान स्टैन्डड, दिशाकल्प (पाक्षिक पत्र)
आकाशवाणी बीकानेर केन्द्र, कविताओ एव कहानियो का प्रसारण
प्रकाश्य माटी की गन्ध (कहानी सग्रह)
सम्प्रति — शिक्षा विभाग, सहायक अध्यापिका
राजकीय बोथरा माध्यमिक बालिका विद्यालय
गगाशहर (बीकानेर)



नाम — श्रीमती शीला व्यास

जन्म — 1 जुलाई 1944

जन्म भूमि — वाराणसी (उत्तर प्रदेश)

कर्म भूमि — बीकानेर (राजस्थान)

शिक्षा — एम ए द्वय, इतिहास, हिन्दी, बी एड

* एम ए (हिन्दी) काशी हिन्दू विश्व विद्यालय, वाराणसी
* एम ए (इतिहास) राजस्थान विश्व विद्यालय, जयपुर
* बी एड राजस्थान विश्व विद्यालय, जयपुर

प्रकाशित पुस्तके — हिन्दी व्याकरण कक्षा 3 से 8 तक
अंग्रेजी व्याकरण कक्षा 3 से 8 तक

पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित — शिविरा, छकियारी, सृजन के—आयाम, आज, राजस्थान स्टैन्डर्ड, दिशाकल्प (पाक्षिक पत्र)

आकाशवाणी बीकानेर केन्द्र, कविताओ एव कहानियो का प्रसारण

प्रकाश्य माटी की गन्ध (कहानी सग्रह)

सम्प्रति — शिक्षा विभाग, सहायक अध्यापिका
राजकीय बोथरा माध्यमिक बालिका विद्यालय
गगाशहर (बीकानेर)